Chapter तिहत्तर

बन्दी-गृह से छुड़ाये गये राजाओं को कृष्ण द्वारा आशीर्वाद

इस अध्याय में बतलाया गया है कि जरासन्ध द्वारा बन्दी बनाये गये राजाओं को छुड़ाने के बाद श्रीकृष्ण ने किस तरह उन्हें दर्शन दिया और उन्हें राजकीय उपहार प्रदान किये।

जब कृष्ण ने जरासन्ध द्वारा बन्दी बनाये गये २०,८०० राजाओं को छुड़ा दिया तो तुरन्त ही उन्होंने भूमि पर गिर कर उन्हें नमस्कार किया। फिर वे हाथ जोड़ कर खड़े हो गये और उनकी स्तुति करने लगे। अपने बन्दी होने को, अपने मिथ्या अहंकार को चूर करने के लिए भगवान् की कृपा मानते हुए, राजाओं ने यही प्रार्थना की कि उन्हें वही वर मिले, जिससे भगवान् के चरणकमलों को वे निरन्तर स्मरण करते रहें।

भगवान् ने उन्हें आश्वासन दिया कि उनकी प्रार्थना पूरी की जायेगी। उन्होंने उन्हें अनुदेश दिया, ''तुम लोग वैदिक यज्ञ करते हुए मेरी पूजा करना और धर्म के नियमों के अनुसार अपनी प्रजा की रक्षा करना। तुम अपने मन को मुझमें स्थिर करके सन्तानें उत्पन्न करना और सुख तथा दुख में समभाव बने रहना। इस तरह अपने जीवन के अन्त में तुम अवश्य ही मुझे प्राप्त करोगे।''

इसके बाद कृष्ण ने उन राजाओं को ठीक से नहलवाया तथा वस्त्र पहनवाये और सहदेव से फूलों की मालाएँ, चन्दन-लेप, सुन्दर वस्त्र तथा अन्य राजोचित वस्तुएँ दिलवाईं। उन्हें रत्नों तथा स्वर्णभूषणों से सज्जित कराकर और रथों पर बैठवा कर उनके अपने अपने राज्यों में भिजवा दिया। वे वहाँ जाकर भगवान् द्वारा दिये गये आदेशों के अनुसार फिर से अपने कर्तव्य निभाने लगे।

तब कृष्ण, भीम तथा अर्जुन इन्द्रप्रस्थ के लिए विदा हुए, जहाँ राजा युधिष्ठिर से भेंट करके उन्होंने उन्हें जो कुछ घटा था सब कह सुनाया।

श्रीशुक उवाच
अयुते द्वे शतान्यष्टौ निरुद्धा युधि निर्जिताः ।
ते निर्गता गिरिद्रोण्यां मलिना मलवाससः ॥ १ ॥
क्षुत्क्षामाः शुष्कवदनाः संरोधपरिकर्शिताः ।
ददृशुस्ते घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ २ ॥

श्रीवत्साङ्कं चतुर्बाहुं पद्मगर्भारुणेक्षणम् ।
चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ ३ ॥
पद्महस्तं गदाशङ्ख रथाङ्गैरुपलक्षितम् ।
किरीटहारकटककटिसूत्राङ्गदाञ्चितम् ॥ ४ ॥
भ्राजद्वरमणिग्रीवं निवीतं वनमालया ।
पिबन्त इव चक्षुर्भ्यां लिहन्त इव जिह्वया ॥ ५ ॥
जिघ्रन्त इव नासाभ्यां रम्भन्त इव बाहुभिः ।
प्रणेमुर्हतपाप्मानो मूर्धभिः पादयोर्हरेः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; अयुते—दस हजार; द्वे—दो; शतानि—सौ; अष्टौ—आठ; निरुद्धाः—बन्दी बनाये गये; युधि—युद्ध में; निर्जिताः—पराजित; ते—वे; निर्गताः—बाहर आये; गिरिद्रोण्याम्—जरासन्ध की राजधानी गिरिद्रोणी के किले से; मलिनाः—गन्दे; मल—मलिन; वाससः—जिनके वस्त्र; क्षुत्—भूख से; क्षामाः—दुर्बल; शुष्क—सूखे; वदनाः—मुख; संरोध—बन्धन से; परिकर्शिताः—अत्यधिक क्षीण; ददृशुः—देखा; ते—उन्होंने; घन—बादल की तरह; श्यामम्—गहरा नीला; पीत—पीला; कौशेय—रेशम का; वाससम्—वस्त्र वाले; श्रीवत्स—श्रीवत्स नामक चिह्न द्वारा; अङ्कम्—चिन्हित; चतुः—चार; बाहुम्—भुजाओं वाले; पद्म—कमल के; गर्भ—कोश जैसा; अरुण—गुलाबी; ईक्षणम्—आँखें; चारु—मनोहर; प्रसन्न—तथा प्रसन्न; वदनम्—मुख; स्फुरत्—चमकते; मकर—मगर की आकृति के; कुण्डलम्—कुण्डलों को; पद्म—कमल; हस्तम्—हाथ में; गदा—गदा; शङ्ख—शंख; रथ-अङ्गैः—तथा चक्र से; उपलक्षितम्—पहचाने गये; किरीट—मुकुट; हार—रत्नजटित गले की माला; कटक—सोने के कड़े; कटि-सूत्र—करधनी; अङ्गद—तथा बाजूबन्द; अञ्चितम्—सुसज्जित; भ्राजत्—चमकीले; वर—सुन्दर; मणि—कौस्तुभ-मणि; ग्रीवम्—गर्दन में; निवीतम्—लटकते; वन—जंगली फूलों की; मालया—माला से; पिबन्तः—पीते हुए; इव—मानो; चक्षुर्भ्याम्—अपनी आँखों से; लिहन्तः—चाटते हुए; इव—मानो; जिह्वया—अपनी जीभों से; जिघ्रन्तः—सूँघते हुए; इव—मानो; नासाभ्याम्—अपने नथुनों से; रम्भन्तः—आलिंगन करते हुए; इव—मानो; बाहुभिः—अपनी भुजाओं से; प्रणेमुः—झुक कर प्रणाम किया; हत—नष्ट; पाप्मानः—पाप समूह; मूर्धभिः—अपने सिरों से; पादयोः—चरणों पर; हरेः—भगवान् कृष्ण के।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जरासन्ध ने २०,८०० राजाओं को युद्ध में पराजित करके उन्हें बन्दीखाने में डाल दिया था। जब ये राजा गिरिद्रोणी किले से बाहर आये, तो वे मलिन लग रहे थे और मैले वस्त्र पहने हुए थे। वे भूख के मारे दुबले हो गए थे, उनके चेहरे सूख गये थे और दीर्घकाल तक बन्दी रहने से अत्यधिक कमजोर हो गये थे।

तब राजाओं ने भगवान् को अपने समक्ष देखा। उनका रंग बादल के समान गहरा नीला था और वे पीले रेशम का वस्त्र पहने थे। वे अपने वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिन्ह, अपने चार विशाल भुजाओं, कमल के कोश जैसी गुलाबी रंग की आँखों, अपने सुन्दर हँसमुख चेहरे, अपने चमकते मकर कुण्डलों तथा हाथों में कमल, गदा, शंख तथा चक्र धारण करने से पहचाने जाते थे। उनके शरीर में मुकुट, रत्नजटित गले की माला, सुनहरी करधनी, सुनहले कड़े तथा बाजूबन्द सुशोभित थे और वे अपने गले में चमकीली, मूल्यवान कौस्तुभ मणि तथा जंगली फूलों की माला पहने थे। सारे राजा मानो अपनी आँखों से उनके सौन्दर्य का पान कर रहे थे,

अपनी जीभों से उन्हें चाट रहे थे, अपने नथुनों से उनकी सुगन्धि का आस्वादन कर रहे थे और अपनी भुजाओं से उनका आलिंगन कर रहे थे। अब उनके विगत पापों का उन्मूलन हो चुका था। राजाओं ने भगवान् हरि के चरणों पर अपने अपने शीश रख कर उन्हें प्रणाम किया।

कृष्णसन्दर्शनाह्लाद ध्वस्तसंरोधनक्लमाः ।
प्रशशंसुर्हृषीकेशं गीर्भिः प्राञ्जलयो नृपाः ॥ ७॥

शब्दार्थ

कृष्ण-सन्दर्शन—भगवान् कृष्ण के दर्शन से; आह्लाद—प्रसन्नता; ध्वस्त—उन्मूलित; संरोधन—बन्दी होने के; क्लमाः—थकान; प्रशशंसुः—प्रशंसा की; हृषीका-ईशम्—इन्द्रियों के परम स्वामी को; गीर्भिः—अपने शब्दों में; प्राञ्जलयः—हाथ जोड़े; नृपाः—राजागण।

भगवान् कृष्ण को देखने के आनन्द से उनके बन्दी होने की थकावट दूर हो जाने पर सारे राजा हाथ जोड़ कर खड़े हो गये और उन्होंने हृषीकेश की प्रशंसा की।

राजान ऊचुः
नमस्ते देवदेवेश प्रपन्नार्तिहराव्यय ।
प्रपन्नान्पाहि नः कृष्ण निर्विण्णान्घोरसंसृतेः ॥ ८॥

शब्दार्थ

राजानः ऊचुः—राजाओं ने कहा; नमः—नमस्कार; ते—आपको; देव—देवताओं के; देव—स्वामियों के; ईश—हे परमेश्वर; प्रपन्न—शरणागतों के; आर्ति—क्लेश के; हर—हे हरने वाले; अव्यय—हे अव्यय; प्रपन्नान्—शरणागत; पाहि—बचाइये; नः—हमको; कृष्ण—हे कृष्ण; निर्विण्णान्—निराशों को; घोर—भीषण; संसृतेः—संसार से।

राजाओं ने कहा : हे शासनकर्ता देवताओं के स्वामी, हे शरणागत भक्तों के क्लेश को नष्ट करने वाले, हम आपको नमस्कार करते हैं। चूँकि हमने आपकी शरण ग्रहण की है, अतः हे अव्यय कृष्ण, हमें इस विकट भौतिक जीवन से बचाइये, जिसने हमें इतना निराश बना दिया है।

नैनं नाथानुसूयामो मागधं मधुसूदन ।
अनुग्रहो यद्भवतो राज्ञां राज्यच्युतिर्विभो ॥ ९॥

शब्दार्थ

न—नहीं; एनम्—यह; नाथ—हे स्वामी; अनुसूयामः—दोष निकालते हैं; मागधम्—मगध के राजा को; मधुसूदन—हे कृष्ण; अनुग्रहः—कृपा; यत्—चूँकि; भवतः—आपका; राज्ञाम्—राजाओं के; राज्य—राज्य से; च्युतिः—पतन; विभो—हे सर्वशक्तिमान।

हे प्रभु मधुसूदन, हम इस मगधराज को दोष नहीं देते क्योंकि वास्तव में यह तो आपकी कृपा है कि हे विभु, सारे राजा अपने राज-पद से नीचे गिरते हैं।

तात्पर्य : यह महत्त्वपूर्ण बात है कि कृष्ण का दर्शन कर लेने पर तथा अपने पापों से शुद्ध हो जाने से राजाओं को जरासन्ध के प्रति कोई भौतिक घृणा या कटुता का अनुभव नहीं हुआ यद्यपि उसने उन्हें बन्दी बनाकर रखा था। कृष्ण का दर्शन करने मात्र से ही राजागण कृष्णभावनामृत की स्थिति को प्राप्त हो गये और ये श्लोक बोलने लगे जो गहन आध्यात्मिक ज्ञान को दर्शाने वाले हैं।

राज्यैश्वर्यमदोन्नद्धो न श्रेयो विन्दते नृपः ।
त्वन्मायामोहितोऽनित्या मन्यते सम्पदोऽचलाः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

राज्य—राज्य; ऐश्वर्य—तथा ऐश्वर्य से; मद—नशे से; उन्नद्धः—वश में न आकर; न—नहीं; श्रेयः—असली लाभ; विन्दते—प्राप्त करते हैं; नृपः—राजा; त्वत्—आपकी; माया—मायाशक्ति से; मोहितः—मोहित; अनित्याः—क्षणिक; मन्यते—सोचता है; सम्पदः—सम्पत्ति; अचलाः—स्थायी।

अपने ऐश्वर्य तथा शासनशक्ति के मद से चूर राजा आत्मसंयम खो देता है और अपना असली कल्याण प्राप्त नहीं कर सकता। इस तरह आपकी मायाशक्ति से मोहग्रस्त होकर वह अपनी क्षणिक सम्पदा को स्थायी मान बैठता है।

तात्पर्य : *उन्नद्ध* शब्द सूचित करता है कि जो मिथ्या अहंकार से मदान्ध हो जाता है, वह सदाचार की सीमा तोड़ देता है। मनुष्य-जीवन धर्म के द्वारा अनुशासित होने के लिए है, जिससे धीरे-धीरे कृष्णभावनामृत की पूर्णता तक बढ़ा जा सके। किन्तु मूर्ख व्यक्ति सम्पत्ति तथा शक्ति से अन्धा होकर ईश्वर तथा प्रकृति के नियमों के विरुद्ध मनमाने ढंग से कर्म करने में हिचकता नहीं। दुर्भाग्यवश आज सम्पन्न पाश्चात्य देशों में यही स्थिति है।

मृगतृष्णां यथा बाला मन्यन्त उदकाशयम् ।
एवं वैकारिकीं मायामयुक्ता वस्तु चक्षते ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

मृग-तृष्णाम्—मृगतृष्णा; यथा—जिस तरह; बालाः—बच्चों जैसी बुद्धि वाले व्यक्ति; मन्यन्ते—विचार करते हैं; उदक—जल के; आशयम्—आगार को; एवम्—उसी तरह; वैकारिकीम्—विकारों के अधीन; मायाम्—माया को; अयुक्ताः—विवेकहीन; वस्तु—चीज जैसा; चक्षते—दिखता है।

जिस तरह बालबुद्धि वाले लोग मरूस्थल में मृगतृष्णा को जलाशय मान लेते हैं, उसी तरह जो अविवेकी हैं, वे माया के विकारों को वास्तविक मान लेते हैं।

वयं पुरा श्रीमदनष्टदृष्टयो
जिगीषयास्या इतरेतरस्पृधः ।
घ्नन्तः प्रजाः स्वा अतिनिर्घृणाः प्रभो
मृत्युं पुरस्त्वाविगणय्य दुर्मदाः ॥ १२ ॥
त एव कृष्णाद्य गभीररंहसा
दुरन्तवीर्येण विचालिताः श्रियः ।
कालेन तन्वा भवतोऽनुकम्पया
विनष्टदर्पाश्चरणौ स्मराम ते ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

वयम्—हम; पुरा—इसके पूर्व; श्री—ऐश्वर्य के; मद—नशे से; नष्ट—विनष्ट; दृष्टयः—जिसकी दृष्टि; जिगीषया—जीतने की इच्छा से; अस्याः—इस (पृथ्वी); इतर-इतर—एक-दूसरे से; स्पृधः—लड़ते-झगड़ते; घ्नन्तः—आक्रमण करते; प्रजाः—नागरिक; स्वाः—अपना, निजी; अति—अत्यधिक; निर्घृणाः—क्रूर; प्रभो—हे प्रभु; मृत्युम्—मृत्यु को; पुरः—समक्ष; त्वा—आपको; अविगणय्य—परवाह न करके; दुर्मदाः—उद्धत; ते—वे (हमीं); एव—निस्सन्देह; कृष्ण—हे कृष्ण; अद्य—अब; गभीर—रहस्यमय; रंहसा—गतिशीलता; दुरन्त—दुर्दम; वीर्येण—बल से; विचालिताः—चले जाने के लिए बाध्य हुए; श्रियः—हमारे ऐश्वर्य से; कालेन—समय से; तन्वा—आपका साकार रूप; भवतः—आपकी; अनुकम्पया—कृपा से; विनष्ट—विनष्ट; दर्पाः—जिनके गर्व; चरणौ—दो पाँवों को; स्मराम—स्मरण करें; ते—तुम्हारे।

इसके पूर्व धन के मद से अन्धे होकर हमने इस पृथ्वी को जीतना चाहा था और इस तरह हम अपनी ही प्रजा को क्रूरतापूर्वक यातना देते हुए विजय पाने के लिए एक-दूसरे से लड़ते रहे। हे प्रभु, हमने दम्भ में आकर अपने समक्ष मृत्यु रूप में उपस्थित आपका अनादर किया। किन्तु हे कृष्ण, अब आपका वह शक्तिशाली स्वरूप जो काल कहलाता है और रहस्यमय ढंग से तथा दुर्दम रूप में गतिशील है उसने हमसे हमारे ऐश्वर्य छीन लिये हैं। चूँकि अब आपने दया करके हमारे गर्व को नष्ट कर दिया है, अतएव हमारी आपसे याचना है कि हम केवल आपके चरणकमलों का स्मरण करते रहें।

अथो न राज्यम्मृगतृष्णिरूपितं
देहेन शश्वत्पतता रुजां भुवा ।
उपासितव्यं स्पृहयामहे विभो
क्रियाफलं प्रेत्य च कर्णरोचनम् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

अथ उ—इसके आगे; न—नहीं; राज्यम्—राज्य; मृग-तृष्णि—मृगतृष्णा की तरह; रूपितम्—प्रकट होने वाला; देहेन—भौतिक शरीर से; शश्वत्—निरन्तर; पतता—मर्त्य; रुजाम्—रोगों के; भुवा—जन्मस्थान; उपासितव्यम्—सेवा किये जाने के लिए; स्पृहयामहे—हम लालायित रहते हैं; विभो—हे सर्वशक्तिमान; क्रिया—पुण्यकार्य का; फलम्—फल; प्रेत्य—अगले जन्म में जाकर; च—तथा; कर्ण—कानों के लिए; रोचनम्—लोभ।

अब हम कभी भी मृगतृष्णा तुल्य ऐसे राज्य के लिए लालायित नहीं होंगे जो इस मर्त्य शरीर

द्वारा सेवित हो वह शरीर जो रोग तथा कष्ट का कारण हो और प्रत्येक क्षण क्षीण होने वाला हो। हे विभु, न ही हम अगले जन्म में पुण्यकर्म के दिव्य फल भोगने की लालसा रखेंगे, क्योंकि ऐसे फलों का वायदा कानों के लिए रिक्त बहलावे के समान है।

तात्पर्य : राज्य को अथवा राजनीतिक प्रभुता को बनाये रखने के लिए मनुष्य को कठिन श्रम करना होता है। फिर भी वह शरीर जो कि मनुष्य की राजनैतिक शक्ति को बनाये रखने के लिए कठिन परिश्रम करता है, स्वयं नश्वर है। प्रति क्षण यह शरीर मृत्यु की ओर बढ़ता रहता है और इसे अनेक कष्टप्रद रोग भोगने पड़ सकते हैं। इस तरह शुद्ध आत्मा के लिए संसारी शक्ति का यह सारा खेल समय का अपव्यय है। उसे तो अपनी सुप्त कृष्णचेतना को जागृत करने की आवश्यकता रहती है।

वैदिक शास्त्रों तथा अन्य धार्मिक ग्रंथों में उन लोगों के लिए, जो इस जीवन में पुण्यकर्म करते हैं, अगले जन्म में समृद्धि तथा स्वर्गिक भोग दिलाने के अनेक वायदे मिलते हैं। ऐसे वायदे सुनने में मधुर लगते हैं, किन्तु वे इससे अधिक कुछ नहीं हैं। भौतिक भोग चाहे स्वर्ग का हो या नरक का, शुद्ध आत्मा के लिए एक प्रकार का मोह है। भाग्यशाली राजाओं को अब, जबकि उन्हें भगवान् कृष्ण का सान्निध्य मिला है, भौतिक सृष्टि के मायाजाल से परे उच्चतर आध्यात्मिक सत्य की अनुभूति हो गई है।

तं नः समादिशोपायं येन ते चरणाब्जयोः ।
स्मृतिर्यथा न विरमेदपि संसरतामिह ॥ १५॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; नः—हमको; समादिश—कृपया आदेश दें; उपायम्—उपाय; येन—जिससे; ते—तुम्हारे; चरण—चरणों के; अब्जयोः—कमल सदृश; स्मृतिः—याद; यथा—जिस तरह; न विरमेत्—रुके नहीं; अपि—भी; संसरताम्—जन्म-मृत्यु के चक्र में घूम रहे हैं, जो, उनके लिए; इह—इस संसार में।

कृपया हमें बतलाएँ कि हम किस तरह आपके चरणकमलों का निरन्तर स्मरण कर सकें, यद्यपि हम इस संसार में जन्म-मृत्यु के चक्र में घूम रहे हैं।

तात्पर्य : भगवत्कृपा होने पर ही हम भगवान् का निरन्तर स्मरण कर सकते हैं। परम मोक्ष प्राप्त करने की सबसे आसान विधि ऐसा ही स्मरण है, जैसी कि *भगवद्गीता* (८.१४) में बतलायी गयी है—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥

''जो बिना किसी प्रकार के विचलन के मेरा स्मरण सदैव करता है हे पार्थ! मैं उसके भक्ति में निरन्तर लगे रहने के कारण उसके लिए आसानी से सुलभ हो जाता हूँ।''

अपि संसरताम् इह शब्द सूचित करते हैं कि राजागण न केवल मुक्ति के लिए कृष्ण के पास पहुँच रहे थे अपितु उनके चरणकमलों को सदैव स्मरण करते रहने में समर्थ होने का वर प्राप्त करने के लिए ऐसा कर रहे थे। ऐसा निरन्तर स्मरण प्रेम का लक्षण है और भगवत्प्रेम जीवन का वास्तविक लक्ष्य है।

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने ।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

कृष्णाय—कृष्ण के प्रति; वासुदेवाय—वसुदेव के पुत्र के प्रति; हरये—भगवान् हरि के प्रति; परम-आत्मने—परमात्मा; प्रणत—शरणागत; क्लेश—कष्ट के; नाशाय—नष्ट करने वाले के प्रति; गोविन्दाय—गोविन्द के प्रति; नमः नमः—बारम्बार नमस्कार।

हम वसुदेव के पुत्र भगवान् कृष्ण अर्थात् हरि को बारम्बार नमस्कार करते हैं। वह परमात्मा गोविन्द उन सबों के कष्टों को दूर कर देता है, जो उनकी शरण में जाते हैं।

श्रीशुक उवाच
संस्तूयमानो भगवान्राजभिर्मुक्तबन्धनैः ।
तानाह करुणस्तात शरण्यः श्लक्ष्णया गिरा ॥ १७॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; संस्तूयमाणः—अत्यन्त प्रशंसा किये जा रहे; भगवान्—भगवान् ने; राजभिः—राजाओं द्वारा; मुक्त—मुक्त किये गये; बन्धनैः—बन्धन से; तान्—उनसे; आह—कहा; करुणः—दयालु; तात—हे प्रिय (राजा परीक्षित); शरण्यः—शरण देने वाले; श्लक्ष्णया—मधुर; गिरा—वाणी से।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस तरह बन्धन से मुक्त हुए राजाओं ने भगवान् की खूब प्रशंसा की। तब हे परीक्षित, दयालु शरणदाता ने मधुर वाणी में उनसे कहा।

श्रीभगवानुवाच
अद्य प्रभृति वो भूपा मय्यात्मन्यखिलेश्वरे ।
सुदृढा जायते भक्तिर्बाढमाशंसितं तथा ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; अद्य प्रभृति—आज से; वः—तुम्हारा; भू-पाः—हे राजाओ; मयि—मुझमें; आत्मनि—आत्मा में; अखिल—समस्त; ईश्वरे—नियन्ता में; सु—अत्यन्त; दृढा—स्थिर; जायते—उत्पन्न होगी; भक्तिः—भक्ति; बाढम्—निश्चित रूप से; आशंसितम्—अभीष्ट; तथा—उसी तरह।

भगवान् ने कहा : हे राजाओ, आज से तुम लोगों को मुझ परमात्मा तथा ईश्वर में दृढ़ भक्ति

प्राप्त होगी। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि तुम जैसे चाहोगे वैसे ही यह भक्ति चलती रहेगी।

दिष्ट्या व्यवसितं भूपा भवन्त ऋतभाषिणः ।
श्रीयैश्वर्यमदोन्नाहं पश्य उन्मादकं नृणाम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

दिष्ट्या—भाग्यवान; व्यवसितम्—संकल्प; भूपाः—हे राजाओ; भवन्तः—आप लोग; ऋत—सच सच; भाषिणः—बोलने वाले; श्री—सम्पत्ति; ऐश्वर्य—तथा शक्ति के; मद—नशे में; उन्नाहम्—संयम का अभाव; पश्ये—देखता हूँ; उन्मादकम्—मतवाला बनाते हुए; नृणाम्—मनुष्यों के लिए।

हे राजाओ, सौभाग्यवश तुम लोगों ने सही निर्णय किया है और जो कुछ कहा है, वह सच है। मैं देख रहा हूँ कि मनुष्यों में आत्मसंयम के अभाव से जो कि ऐश्वर्य तथा शक्ति के मद के कारण उत्पन्न होता है, मादकता ही आती है।

हैहयो नहुषो वेणो रावणो नरकोऽपरे ।
श्रीमदाद्भ्रंशिताः स्थानाद्देवदैत्यनरेश्वराः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

हैहयः नहुषः वेणः—हैहय (कार्तवीर्य), नहुष तथा वेण; रावणः नरकः—रावण तथा नरक; अपरे—तथा अन्य; श्री—ऐश्वर्य के कारण; मदात्—अपने नशे के कारण; भ्रंशिताः—नीचे गिराये गये; स्थानात्—अपने पदों से; देव—देवताओं के; दैत्य—असुरों के; नर—मनुष्यों के; ईश्वराः—शासकगण।

हैहय, नहुष, वेण, रावण, नरक तथा देवताओं, पुरुषों और असुरों के अन्य अनेक शासक अपने अपने ऊँचे पदों से इसीलिए नीचे गिरे, क्योंकि वे भौतिक ऐश्वर्य से मदोन्मत्त हो उठे थे।

तात्पर्य : जैसाकि श्रीधर स्वामी ने विवरण दिया है, चूँकि हैहय ने परशुराम के पिता जमदग्नि की कामधेनु गाय चुरा ली थी, इसलिए परशुराम ने उसे उसके दम्भी पुत्रों सहित मार डाला। नहुष ने जब अस्थायी रूप से इन्द्र का पद ग्रहण किया, तो उसे गर्व हो आया। जब उसने कुछ ब्राह्मणों को आदेश दिया कि वे उसे पालकी पर चढ़ाकर इन्द्र की सती पत्नी शची के पास अवैध भेंट कराने ले चलें तो ब्राह्मणों ने उसे उसके पद से च्युत कर दिया और उसे एक वृद्ध पुरुष बना दिया। इसी तरह राजा वेण भी उन्मत्त था और जब उसने ब्राह्मणों का अपमान किया, तो उन्होंने *हुम* अक्षर का उच्चारण करके उसे मार डाला। रावण राक्षसों का विख्यात शासक था किन्तु काम के वशीभूत होकर उसने माता सीता का अपहरण कर लिया, अतः सीतापति भगवान् रामचन्द्र ने उसका वध कर दिया। नरक दैत्यों का शासक था जिसने माता अदिति के कुण्डल चुराने का दुस्साहस किया था जिस अपराध के लिए उसे भी मार

डाला गया। इस तरह इतिहास-भर में शक्तिशाली राजा अपने पदों से च्युत होते रहे हैं, क्योंकि वे अपने तथाकथित ऐश्वर्य से मदोन्मत्त होते रहे हैं।

भवन्त एतद्विज्ञाय देहाद्युत्पाद्यमन्तवत् ।
मां यजन्तोऽध्वरैर्युक्ताः प्रजा धर्मेण रक्ष्यथ ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

भवन्तः—आप लोग; एतत्—यह; विज्ञाय—जान कर; देह-आदि—भौतिक शरीर तथा अन्य बातें; उत्पाद्यम्—जन्म के अधीन; अन्त-वत्—अन्त होने वाला; माम्—मुझको; यजन्तः—पूजा करते हुए; अध्वरैः—वैदिक यज्ञों के द्वारा; युक्ताः—विमल बुद्धि से युक्त; प्रजाः—अपनी प्रजा की; धर्मेण—धार्मिक सिद्धान्तों के अनुसार; रक्ष्यथ—रक्षा करनी चाहिए।

यह समझते हुए कि यह भौतिक शरीर तथा इससे सम्बद्ध हर वस्तु का आदि तथा अन्त है, वैदिक यज्ञों के द्वारा मेरी पूजा करो और धर्म के सिद्धान्तों के अनुसार विमल बुद्धि से अपनी प्रजा की रक्षा करो।

सन्तन्वन्तः प्रजातन्तून्सुखं दुःखं भवाभवौ ।
प्राप्तं प्राप्तं च सेवन्तो मच्चित्ता विचरिष्यथ ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

सन्तन्वन्तः—उत्पन्न करते हुए; प्रजा—सन्तान के; तन्तून्—रेशे (पीढ़ियाँ); सुखम्—सुख; दुःखम्—दुख; भव—जन्म; अभवौ—तथा मृत्यु; प्राप्तम् प्राप्तम्—ज्यों ज्यों सामना पड़े; च—तथा; सेवन्तः—स्वीकार करते हुए; मत्-चित्ताः—मुझ पर अपने मन को स्थिर करके; विचरिष्यथ—इधर-उधर विचरण करना चाहिए।

सन्तान की पीढ़ियों की पीढ़ियाँ उत्पन्न करते तथा सुख-दुख, जन्म एवं मृत्यु का सामना करते तुम लोग जीवन बिताते समय सदैव अपने मनों को मुझ पर स्थिर रखना।

उदासीनाश्च देहादावात्मारामा धृतव्रताः ।
मय्यावेश्य मनः सम्यङ्मामन्ते ब्रह्म यास्यथ ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

उदासीनाः—अन्यमनस्क; च—तथा; देह-आदौ—शरीर इत्यादि के प्रति; आत्म-आरामाः—आत्मतुष्ट; धृत—दृढ़ता से पकड़े हुए; व्रताः—अपने व्रतों को; मयि—मुझ में; आवेश्य—एकाग्र करके; मनः—मन को; सम्यक्—पूर्णरूपेण; माम्—मुझको; अन्ते—अन्त में; ब्रह्म—परम सत्य; यास्यथ—प्राप्त करोगे।

शरीर तथा उससे सम्बद्ध हर वस्तु से विरक्त हो जाओ। आत्मतुष्ट रह कर अपने मन को मुझमें एकाग्र करते हुए अपने व्रतों का दृढ़ता से पालन करो। इस तरह तुम लोग अन्त में मुझ परम सत्य को प्राप्त कर सकोगे।

श्रीशुक उवाच
इत्यादिश्य नृपान्कृष्णो भगवान्भुवनेश्वरः ।
तेषां न्ययुङ्क्त पुरुषान्स्त्रियो मज्जनकर्मणि ॥ २४॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; आदिश्य—आदेश देकर; नृपान्—राजाओं को; कृष्णः—कृष्ण; भगवान्—भगवान्; भुवन—सारे लोकों के; ईश्वरः—स्वामी; तेषाम्—उनके; न्ययुङ्क्त—लगाया; पुरुषान्—सेवकों; स्त्रियः—तथा स्त्रियों को; मज्जन—धोने के; कर्मणि—काम में।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस प्रकार राजाओं को आदेश देकर समस्त लोकों के परम स्वामी भगवान् कृष्ण ने समस्त सेवकों तथा सेविकाओं को उन्हें स्नान कराने तथा सँवारने के काम में लगा दिया।

सपर्यां कारयामास सहदेवेन भारत ।
नरदेवोचितैर्वस्त्रैर्भूषणैः स्रग्विलेपनैः ॥ २५॥

शब्दार्थ

सपर्याम्—सेवा; कारयाम् आस—करवाई; सहदेवेन—जरासन्ध के पुत्र सहदेव से; भारत—हे भरतवंशी; नर-देव—राजागण; उचितैः—अनुकूल; वस्त्रैः—वस्त्रों से; भूषणैः—गहनों से; स्रक्—फूल-मालाओं से; विलेपनैः—तथा चन्दन-लेप से।

हे भारत, तब भगवान् ने राजा सहदेव से वस्त्र, आभूषण, मालाएँ तथा चन्दन-लेप आदि राजोचित भेंटें दिलाकर उन राजाओं का सम्मान कराया।

भोजयित्वा वरान्नेन सुस्नातान्समलङ्कृतान् ।
भोगैश्च विविधैर्युक्तांस्ताम्बूलाद्यैर्नृपोचितैः ॥ २६॥

शब्दार्थ

भोजयित्वा—भोजन कराकर; वर—उत्तम; अन्नेन—भोजन से; सु—उचित ढंग से; स्नातान्—नहलाये; समलङ्कृतान्—सुसज्जित; भोगैः—भोग की सामग्रियों से; च—तथा; विविधैः—विविध; युक्तान्—प्रदत्त; ताम्बूल—पान; आद्यैः—इत्यादि; नृप—राजाओं के लिए; उचितैः—उचित।

जब वे सब भलीभाँति नहा चुके और सज-धज गये तो भगवान् कृष्ण ने उनके लिए उत्तम भोजन की व्यवस्था कराई। उन्होंने उन सबों को राजोचित वस्तुएँ यथा पान इत्यादि वस्तुएँ भी भेंट कीं।

ते पूजिता मुकुन्देन राजानो मृष्टकुण्डलाः ।
विरेजुर्मोचिताः क्लेशात्प्रावृडन्ते यथा ग्रहाः ॥ २७॥

शब्दार्थ

ते—वे; पूजिताः—सम्मानित; मुकुन्देन—कृष्ण द्वारा; राजानः—राजागण; मृष्ट—चमकते; कुण्डलाः—कुण्डलों वाले; विरेजुः—भव्य लगते थे; मोचिताः—छुड़ाये गये; क्लेशात्—कष्ट से; प्रावृट्—वर्षा ऋतु के; अन्ते—अन्त में; यथा—जिस तरह; ग्रहाः—लोक (यथा चन्द्रमा)।

भगवान् मुकुन्द द्वारा सम्मानित किये गये एवं कष्ट से मुक्त हुए राजागण अपने कानों के चमकते कुण्डलों सहित वैसे ही शोभायमान हुए जिस तरह वर्षा ऋतु की समाप्ति पर आकाश में चन्द्रमा तथा अन्य ग्रह खूब चमकने लगते हैं।

रथान्सदश्वानारोप्य मणिकाञ्चनभूषितान् ।
प्रीणय्य सुनृतैर्वाक्यैः स्वदेशान्प्रत्ययापयत् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

रथान्—रथों पर; सत्—उत्तम; अश्वान्—घोड़ों सहित; आरोप्य—चढ़ाकर; मणि—रत्न; काञ्चन—तथा सोना; भूषितान्—सुसज्जित; प्रीणय्य—तुष्ट करके; सुनृतैः—मधुर; वाक्यैः—शब्दों से; स्व—अपने अपने; देशान्—राज्यों को; प्रत्ययापयत्—वापस भेज दिया।

तत्पश्चात् भगवान् ने उन राजाओं को सुन्दर घोड़ों से खींचे जाने वाले तथा रत्नों एवं स्वर्ण से सुसज्जित रथों पर चढ़वाकर और मधुर शब्दों से प्रसन्न करके उन्हें उनके राज्यों में वापस भिजवा दिया।

त एवं मोचिताः कृच्छ्रात्कृष्णेन सुमहात्मना ।
ययुस्तमेव ध्यायन्तः कृतानि च जगत्पतेः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

ते—वे; एवम्—इस प्रकार; मोचिताः—मुक्त हुए; कृच्छ्रात्—मुश्किल से; कृष्णेन—कृष्ण द्वारा; सु-महा-आत्मना—महापुरुष; ययुः—चले गये; तम्—उनको; एव—एकमात्र; ध्यायन्तः—ध्यान करते; कृतानि—कार्यों को; च—तथा; जगत्-पतेः—ब्रह्माण्ड के स्वामी के।

इस तरह पुरुषों में महानतम कृष्ण द्वारा सारे कष्टों से मुक्त किये गये राजागण विदा हुए और जब वे जा रहे थे, तो वे एकमात्र उन ब्रह्माण्ड के स्वामी तथा उनके अद्भुत कृत्यों के विषय में ही सोच रहे थे।

जगदुः प्रकृतिभ्यस्ते महापुरुषचेष्टितम् ।
यथान्वशासद्भगवांस्तथा चक्रुरतन्द्रिताः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

जगदुः—बतलाया; प्रकृतिभ्यः—अपने मंत्रियों तथा अन्य संगियों से; ते—उन (राजाओं ने); महा-पुरुष—परम पुरुष के; चेष्टितम्—कार्यकलापों को; यथा—जिस तरह; अन्वशासत्—आदेश दिया; भगवान्—भगवान् ने; तथा—उसी तरह; चक्रुः—उन्होंने किया; अतन्द्रिताः—बिना किसी ढिलाई के।

राजाओं ने जाकर अपने मंत्रियों तथा अन्य संगियों से वे सारी बातें बतलाईं जो भगवान् ने की थीं और तब उन्होंने जो जो आदेश दिये थे, उनका कर्मठता के साथ पालन किया।

जरासन्धं घातयित्वा भीमसेनेन केशवः ।
पार्थाभ्यां संयुतः प्रायात्सहदेवेन पूजितः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

जरासन्धम्—जरासन्ध को; घातयित्वा—वध करवाकर; भीमसेनेन—भीमसेन द्वारा; केशवः—कृष्ण; पार्थाभ्यम्—पृथा के दोनों पुत्रों (भीम तथा अर्जुन) के; संयुतः—साथ साथ; प्रायात्—विदा हुए; सहदेवेन—सहदेव द्वारा; पूजितः—पूजा किये जाकर।

भीमसेन द्वारा जरासन्ध का वध करवाकर, भगवान् कृष्ण ने राजा सहदेव की पूजा स्वीकार की और तब पृथा के दोनों पुत्रों के साथ विदा हुए।

गत्वा ते खाण्डवप्रस्थं शङ्खान्दध्मुर्जितारयः ।
हर्षयन्तः स्वसुहृदो दुर्हृदां चासुखावहाः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

गत्वा—जाकर; ते—उन्होंने; खाण्डव-प्रस्थम्—इन्द्रप्रस्थ में; शङ्खान्—अपने अपने शंख; दध्मुः—बजाये; जित—जीत कर; अरयः—शत्रु को; हर्षयन्तः—हर्षित करते; स्व—अपने; सुहृदः—शुभचिन्तकों; दुर्हृदाम्—तथा शत्रुओं को; च—तथा; असुख—अप्रसन्नता; आवहाः—लाते हुए।

जब वे इन्द्रप्रस्थ आ गये तो विजयी वीरों ने अपने शंख बजाये, जिससे उनके शुभचिन्तक मित्रों को तो हर्ष हुआ, किन्तु उनके शत्रुओं को संताप पहुँचा।

तच्छ्रुत्वा प्रीतमनस इन्द्रप्रस्थनिवासिनः ।
मेनिरे मागधं शान्तं राजा चाप्तमनोरथः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

तत्—वह; श्रुत्वा—सुन कर; प्रीत—प्रसन्न; मनसः—मन में; इन्द्रप्रस्थ-निवासिनः—इन्द्रप्रस्थ के वासी; मेनिरे—समझ गये; मागधम्—जरासन्ध को; शान्तम्—अन्त कर दिया; राजा—राजा (युधिष्ठिर); च—तथा; आप्त—प्राप्त किया; मनः-रथः—इच्छाएँ।

उस ध्वनि को सुन कर इन्द्रप्रस्थ के निवासी अत्यन्त प्रसन्न हुए, क्योंकि वे समझ गये कि मगध के राजा का अब अन्त कर दिया गया है। राजा युधिष्ठिर ने अनुभव किया कि अब उनके मनोरथ पूरे हो गये।

अभिवन्द्याथ राजानं भीमार्जुनजनार्दनाः ।

सर्वमाश्रावयां चक्रुरात्मना यदनुष्ठितम् ॥ ३४॥

शब्दार्थ

अभिवन्द्य—नमस्कार करके; अथ—तब; राजानम्—राजा को; भीम-अर्जुन-जनार्दना:—भीम, अर्जुन तथा कृष्ण; सर्वम्—सारी बातें; आश्रावयाम् चक्रु:—बतलाईं; आत्मना—स्वयमेव; यत्—जो; अनुष्ठितम्—सम्पन्न हुईं।

भीम, अर्जुन तथा जनार्दन ने राजा को प्रणाम किया और जो कुछ उन्होंने किया था, वह सब उनसे कह सुनाया।

निशम्य धर्मराजस्तत्केशवेनानुकम्पितम् ।
आनन्दाश्रुकलां मुञ्चन्प्रेम्णा नोवाच किञ्चन ॥ ३५॥

शब्दार्थ

निशम्य—सुन कर; धर्म-राज:—धर्म के राजा, युधिष्ठिर ने; तत्—वह; केशवेन—कृष्ण द्वारा; अनुकम्पितम्—अनुकम्पा, कृपा; आनन्द—आनन्द के; अश्रु-कलाम्—अश्रु; मुञ्चन्—गिराते हुए; प्रेम्णा—प्रेमवश; न उवाच—नहीं कहा; किञ्चन—कुछ भी।

भगवान् कृष्ण ने उन पर जो महती कृपा की थी उसका विवरण सुन कर धर्मराज ने भावातिरेक के अश्रु बहाये। उन्हें इतने प्रेम का अनुभव हुआ कि वे कुछ भी नहीं कह पाये।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत् के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''बन्दी-गृह से छुड़ाये गये राजाओं को कृष्ण द्वारा आशीर्वाद'' नामक तिहत्तरवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।